विचार बिन्दु

मन की प्रसन्नता से समस्त मानसिक और शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं। –रामदास

देशी पर्वों व उत्सवों पर हावी होती बाज़ार संस्कृति

दशहरे के साथ त्योहारों का मौसम शुरू हो गया है। ये हमारे सांस्कृतिक पर्व हैं। लेकिन उनका सांस्कृतिक महत्व अब बाज़ार ने हमसे छीन लिया है। हर कहीं गरबा के व्यावसायिक ईवेंट हो रहे हैं। राजस्थान का घूमर विस्मृत हो गया है, क्योंकि उसका कोई प्रायोजक नहीं है। हमारी स्थानीय लोक संस्कृतियों को गुमनामी के अंधेरे में धकेलने में राज्य भी पीछे नहीं है। राज्य कभी कला और संस्कृति की पवित्रता का संरक्षक हुआ करता था वह भी नासमझी में ईवेंट के जाल में फंस कर उसे बिगाड़ने में लगा है। हमारे त्यौहार उत्सव होते हैं। उनमें सुकून भरा मनोरंजन होता है। औपचारिकताओं से मुक्त खुशियों भरा आपसी मिलन त्यौहारों का माहौल बनाता है। मगर अब सिर्फ प्रायोजित धमाल होता है जिसमें उत्पादों और सेवाओं के ग्राहक होते हैं। पैसा कमा कर बाज़ार का पेट भरने की अंधी दौड़ में उलझे लोग ईवेंट में पैसा खर्च करके अपनी उदासियां दूर करने आते हैं। बाज़ार की अपनी संस्कृति होती है जिसमें मुनाफे के अलावा कुछ नहीं होता। उसमें धैर्य भी नहीं होता। मुनाफा भले ही अपराध करके कमाया जाय, मगर उसे तुरंत कमाना होता है। संस्कृतियां एक-दूसरे पर असर डालती रही हैं। इतिहास में कभी-कभी कोई संस्कृति किसी दूसरी पर हावी हुई भी लगती है। यह एक धीमी सामान्य सामाजिक प्रक्रिया रही है। लेकिन आज के समय में बाज़ार की ताकतें अपने हिसाब से सांस्कृतिक रुझान बनाती हैं और उन्हें बेचती हैं। समाजशास्त्री इसे मोनोकल्चर मार्केटप्लेस कहते हैं, जहां स्थानीय पहचान को कमोडिटी बना दिया जाता है। सुपरमार्केट के गलियारों, स्ट्रीमिंग एल्गोरिदम और हमारे शहरों के फास्ट-फ़ैशन बुटीक में इसे स्पष्ट देखा जा सकता है। सांस्कृतिक लेन-देन अब माइग्रेशन, भूगोल या आध्यात्मिक खोज से नहीं होता, बल्कि वह बाज़ार की ताकतों से चलता है। आधुनिक बाज़ार कल्चरल ट्रेंड्स थोपता है, और चतुराई से स्थानीय संस्कृति को विस्मृत होने की ओर धकेलता है। कॉर्पोरेट-ड्रिवन मोनोकल्चर विरासतों को एफिशिएंसी, स्केल और प्रॉफिट की वेदी पर बलि चढ़ा देता है। संस्कृति ब्रांड नहीं होती। मगर ईवेंट के लिये ब्रांड जरूरी होता है और हम स्पष्ट देख रहे हैं कि कैसे बाज़ार अपने मुनाफे के लिये संस्कृति को ब्रांड में बदल दे रहा है। पहले, संस्कृतियों के मेलजोल में सदियां लगती थीं, जिससे समुदायों को खुद को ढालने, फिर से समझने और अपनी मुख्य पहचान बनाए रखने का समय मिलता था। आज, एक एल्गोरिदम कुछ ही घंटों में किसी भी एस्थेटिक ट्रेंड को पॉपुलर बना सकता है। जब कोई स्थानीय परंपरा मल्टी-बिलियन-डॉलर मार्केटिंग सिस्टम से टकराती है, तो यह बराबरी की लड़ाई नहीं होती है। स्थानीय संस्कृति इसलिए पीछे नहीं रह जाती क्योंकि वह कमतर होती है, बल्कि इसलिए पिछड़ जाती है क्योंकि उसे व्यवस्थित तरीके से किनारे किया गया होता है। बड़ी टेक कंपनियों से नियंत्रित जिस डिजिटल-इकोसिस्टम में हम रहते हैं उसे विज्ञापन की आय से मुनाफा कमाने के लिये डिज़ाइन किया जाता है। वे आसानी से पचने वाले कंटेंट के लिए ऑप्टिमाइज़्ड एल्गोरिदम का इस्तेमाल करते हैं। स्टैंडर्डाइज़्ड प्रोडक्ट बनाना सस्ता होता है; मार्केट में उसे वितरित करना और बेचना भी आसान होता है। कला, संगीत या कहानी कहने के बारीक, स्थानीय तरीकों को परे धकेल दिया जाता है। हाइपरमार्केट और ग्लोबल रिटेल चेन धीरे-धीरे पारंपरिक हाट-बाज़ार, स्वतंत्र कारीगर और स्थानीय खुदरा दुकानों की जगह लेती जाती है। इस तरह आधुनिक एयर-कंडीशन्ड मॉल या डिजिटल क्विक-कॉमर्स ऐप लेन-देन का एटमाइज़ेशन ले आते हैं। बाज़ार शहरीकरण की होड को भी बढ़ाता है क्योंकि ज़मीन-जायदाद के सौदों में सबसे अधिक मुनाफा होता है।

राजस्थान जैसे कठोर भौगोलिक पारिस्थितिकी में 'एस्थेटिक' का जलवा इंसानी हिम्मत की जीत थी। मरु प्रदेश की रंगीन चमकीली पगड़ियां और घाघरे सोशल मीडिया फ़ीड के लिए डिज़ाइन नहीं किए गए थे; वे एक बेरहम रेगिस्तान को चुनौती देते हुए खुश रहने के मानवीय प्रयास थे। राजस्थानी संगीत कोई एम्बिएंट लाउंज ऑडियो नहीं था। वह ओरल लिटरेचर था जिसमें सदियों की रिश्तों, त्याग, मौसम और बारिश की स्मृतियां बसती थीं। हमारी संस्कृति में संगीत कभी भी पैसिव मनोरंजन नहीं रहा; वह विविधता वाले जीवंत समुदायों की आध्यात्मिक अनुभूति होती थी। लेकिन बाज़ार को असली सांस्कृतिक विविधता नहीं भाती है, क्योंकि इसमें ऐसे मूल्य शामिल होते हैं जिन्हें मोनेटाइज़ नहीं किया जा सकता। बाज़ार अलग-अलग एस्थेटिक्स की इजाज़त तो देता है, लेकिन एक जैसा बिहेवियर चाहता है। स्थानीय कला संस्कृति के रचनाकार को पश्चिमीकृत, अंग्रेजी केंद्रित टेम्पलेट में फिट होने के लिए अपने स्टाइल, भाषा और थीम को बदलने को मजबूर होना पड़ता है। अब सामुदायिक ज़िम्मेदारियां बाज़ार की मुनाफे की सोच और खुली अर्थव्यवस्था ने हथिया ली हैं, जिसमें सोशल सेफ्टीनेट नष्ट हो गया है। ग्लोबल कॉर्पोरेशन सदियों की कम्युनिटी की इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी से प्योर सरप्लस वैल्यू निकालते हैं। फाइव-स्टार हेरिटेज होटलों या लग्ज़री रेगिस्तानी कैंपों में कॉकटेल पीने वाले पर्यटकों के लिए घंटों चलने वाली पवित्र गाथाएं दस मिनट के बैकग्राउंड मनोरंजन में बदल दी जाती हैं। स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म रेगिस्तान के असली संगीत की जगह छोटे, ऑटो-ट्यून हुक की मांग करते हैं। पारंपरिक संगीतकारों की नई पीढ़ी को आम कमर्शियल बीट्स की ओर जाने को ललचाया जाता है। मौसम के हिसाब से चलने वाले खाने का खत्म होना अपनी आंखों के सामने सबने देखा है। ज़बरदस्त मार्केटिंग ने प्रोसेस्ड स्नैक्स को गांव-गांव, बस्ती-बस्ती में फैला दिया है। यहां तक कि राजस्थानी देशी खाने की चीजों का भी व्यवसायीकरण हो गया है। उन्हें महंगी दावतों में परोस कर आम आदमी की थाली से छीन लिया गया है। देशी भवन निर्माण का जो हुनर स्थानीय आब-ओ-हवा के हिसाब से सदियों में विकसित हुआ था, जिसमें चूना पत्थर की दीवारें सांस लेती थी, बीच के आंगन कुदरती हवा आने देते थे। सब समाप्त हो गया हैं। उनकी जगह कंक्रीट के जंगल खड़े हो गए हैं। बाज़ार के हिसाब से बनने वाले निर्माण फेक्टरियों में बने कंक्रीट और बड़े कांच के बाहरी हिस्सों पर इतराते हैं जो गर्म जलवायु के लिए बिल्कुल मुफीद नहीं होते हैं। उन्हें रहने लायक बनाने के लिये ज़्यादा ऊर्जा की खपत वाली एयर कंडीशनिंग की ज़रूरत होती है। इस प्रकार स्थानीय संस्कृति में रचे-बसे आर्किटेक्चर की जगह बाहर के आर्किटेक्चरल टेम्पलेट सर्वत्र पसर गये हैं। राज्य भी बाज़ार की पूरी गिरफ्त में है, जो सांस्कृतिक विरासत को बचाने का सिर्फ दिखावे के तौर पर प्रदर्शन करता है। राज्य कॉर्पोरेट टूरिज्म का समर्थन करता है जो बड़े शहरों और कस्बों के असली ऐतिहासिक मोहल्लों को सजावटी बैकग्राउंड की तरह काम में लेता है। रिहायशी जगहों को, बुटीक, होम-स्टे और एस्प्रेसो और कॉन्टिनेंटल ब्रेकफास्ट बेचने वाले टूरिस्ट कैफों में बदल दिया जाता है। पुराने शहर के बाशिंदे बाहर निकल रहे हैं क्योंकि मोहल्लों को व्यावसायिक मंच में तब्दील किया जा रहा है। बाज़ार की ताकतें स्थानीय संस्कृति को महलों में होने वाली शादियों, आम यादगार चीज़ों की दुकानों और स्क्रीन-प्रिंटेड फ्लेक्स के एक चुने हुए खेल के मैदान में बदल कर संस्कृति को इतिहास में धकेल देती हैं। तब समुदाय इकोलॉजिकल तालमेल, आपसी निर्भरता और कारीगरी के हुनर को खो देते हैं। अलग-अलग संस्कृतियां समस्याओं को हल करने, दुख को समझने और खुशी महसूस करने के अलग-अलग तरीके बताती हैं, मगर बाज़ार एक बना बनाया खांचा देता है।

सांस्कृतिक लेन-देन अब माइग्रेशन, भूगोल या आध्यात्मिक खोज से नहीं होता, बल्कि वह बाज़ार की ताकतों से चलता है। आधुनिक बाज़ार कल्चरल ट्रेंड्स थोपता है, और चतुराई से स्थानीय संस्कृति को विस्मृत होने की ओर धकेलता है। कॉर्पोरेट-ड्रिवन मोनोकल्चर विरासतों को एफिशिएंसी, स्केल और प्रॉफिट की वेदी पर बलि चढ़ा देता है।

संस्कृति को बाज़ार की चक्की से बचाने का मतलब यह नहीं है कि इसके लोगों को गरीबी में धकेल दिया जाए या उन्हें आधुनिकरण से दूर रखा जाए। इसके लिए एक ऐसा इकोनॉमिक इकोसिस्टम बनाने की ज़रूरत है जहां स्थानीय पहचान की सॉवरेन वैल्यू कॉर्पोरेट ट्रेंड्स से ज़्यादा हो। असली गांव के कामों की मदद करना, पवित्र जगहों का सम्मान करना और असली हाथ से बने सामान की सही कीमत देना इन परंपराओं को ज़िंदा रखने के लिए ज़रूरी है। इसमें राज्य और समाज दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में नीति निर्माताओं से यह पूछना हमारा फ़र्ज़ बनाता है कि क्या हमारी जीवंत विरासतों की किस्मत तय करने की इजाज़त कॉर्पोरेट बैलेंस शीट को देनी चाहिए? यह पूछा जाना सामयिक है कि राजस्थान को ऐसी कॉर्पोरेट-स्पॉन्सर्ड परछाई क्यों बनाया जा रहा है जिसमें सिर्फ दरबारी और सामंती परंपराओं का महिममंडन होता है। ऐसे सवाल पूछे जाने का यही समय है। यह पैसिव नॉस्टैल्जिया से आगे बढ़कर स्ट्रक्चरल डिफेंस में शामिल होने का समय है। सरकारों को बाध्य करना होगा कि वे सांस्कृतिक विरासत को उसी प्रकार ज़रूरी 'पब्लिक गुड' (सार्वजनिक कल्याण) माने जिस प्रकार साफ़ हवा या पानीको माना जाता है। स्थानीय इतिहास, स्थानीय भाषाओं और ट्रेडिशनल इकोलॉजिकल नॉलेज पर ज़ोर देने के लिए शिक्षा पाठ्यक्रम को उपनिवेशी नज़रिये से बाहर निकालना होगा। युवा पीढ़ी को सिखाना होगा कि वे अपनी विरासत को अतीत की पुरानी निशानी के तौर पर नहीं, बल्कि भविष्य को आगे बढ़ाने के लिए एक एडवांस्ड टूल के तौर पर देखें। सांस्कृतिक विविधता उतनी ही ज़रूरी है जितनी बायोडायवर्सिटी इस धरती के बने रहने के लिए जरूरी है। जब बाज़ार की ताकतें किसी स्थानीय संस्कृति को खत्म करती हैं, तब समुदाय ज़िंदगी को देखने का अपनी कलेक्टिव जीनियस का एक हिस्सा खो देता है। अब समय आ गया है कि बाज़ार के अनदेखे हाथ को रोका जाए और उन अलग-अलग संस्कृतियों को बचाने वाला हाथ बढ़ाया जाए, जो हमारी दुनिया को रहने लायक बनाती हैं। नीति निर्माताओं को समझना होगा कि ऐसा करके ही राजाओं के शासन से लेकर औपनिवेशिक दौर और आजादी के बाद के दशकों तक चला आ रहा गरीबी का भूगोल बदला जा सकता है।

–अतिथि संपादक,
राजेन्द्र बोड़ा
(वरिष्ठ पत्रकार एवं विश्लेषक)

हम स्वतंत्र व निष्पक्ष पंचायत चुनाव हेतु प्रतिबद्ध

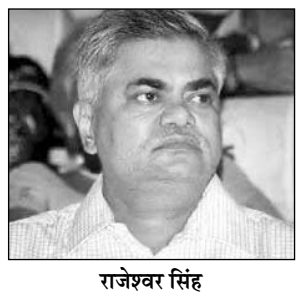

राजेश्वर सिंह

प्रश्न –सर्वप्रथम नगरीय निकायों के चुनाव सफलतापूर्वक संपन्न कराने के लिए आपको बधाई। इसके मुकाबले पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव को आप कितना चुनौतीपूर्ण मानते हैं ?

उत्तर: नगरीय चुनाव कुल 309 नगरीय निकायों के 10845 पार्षद पदों के लिए हुए थे जबकि पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव 41 जिला परिषदों 457 पंचायत समितियों एवं 14403 ग्राम पंचायतों के कुल 155138 जन प्रतिनिधि पदों के लिए संपन्न होंगे। इस प्रकार यह चुनाव ज्यादा विशद, व्यापक और चुनौतीपूर्ण है।

प्रश्न – पंचायती राज चुनाव कितने चरणों में कराने की योजना है और इसके लिए क्या तैयारियाँ की गई हैं?

उत्तर: ये चुनाव चार चरणों में संपन्न होंगे। इसके लिए लोक सूचना क्रमश: 8 अक्टूबर, 13 अक्टूबर, 19 अक्टूबर तथा 31 अक्टूबर 2026 को प्रकाशित होगी। प्रथम चरण में पोलिंग पार्टी 21 से 25 अक्टूबर, द्वितीय चरण में 26 से नवंबर तक तृतीय चरण में दीपावली के तुरंत बाद 13 से 17 नवंबर 2026 तक ग्राम पंचायत मुख्यालय पर रहकर चुनाव कराएगी। जिला परिषद व पंचायत समिति सदस्य पद की मतगणना दिनांक 20 नवंबर 26 को जिला मुख्यालय पर होगी जबकि जिला प्रमुख, उप जिला प्रमुख, प्रधान,पंचायत समिति एवं उप प्रधान, पंचायत समिति का चुनाव क्रमश: 25, 26, 27 एवं 28 नवंबर 2026 को संपन्न होगा।

प्रश्न – ग्राम पंचायत मुख्यालय पर पोलिंग पार्टी का पाँच दिवसीय कार्यक्रम किस प्रकार निर्धारित किया गया है?

उत्तर: पहले दिन पोलिंग पार्टी ग्राम पंचायत मुख्यालय पर पहुँचेगी। दूसरे दिन जिला परिषद एवं पंचायत समिति सदस्य के लिए ईवीएम के माध्यम से मतदान होगा। तीसरे दिन सरपंच व वार्ड पंच के लिए नामांकन लिया जाएगा व चुनाव चिन्ह आवंटित होगा। चौथे दिन इन पदों के लिए बैलट पेपर द्वारा मतदान व मतगणना होगी तथा चुनाव परिणाम घोषित होगा। पांचवें दिन प्रात: काल वार्ड पंचों के द्वारा उपसरपंच का अप्रत्यक्ष रीति से चुनाव कराकर पोलिंग पार्टी मुख्यालय हेतु प्रस्थान करेगी।

प्रश्न – जिला परिषद एवं पंचायत समिति का चुनाव ईवीएम से तथा सरपंच व वार्ड पंच का चुनाव बैलट पेपर से क्यों कराया जा रहा है ?

उत्तर: राजस्थान में मात्र 10 हजार इवीएम उपलब्ध है। शेष इवीएम केंद्रीय चुनाव आयोग व मध्य प्रदेश राज्य चुनाव आयोग से प्राप्त की गई है जो मात्र जिला परिषद व पंचायत समिति सदस्य का चुनाव कराने के लिए ही पर्याप्त है। इस वजह से सरपंच व वार्ड पंच का चुनाव बेलट पेपर से कराया जा रहा है।

प्रश्न – सरपंच एवं वार्ड पंच को अपने चुनाव चिह्न के प्रचार-प्रसार के लिए अत्यल्प समय दिया गया है। इस संबंध में आप क्या कहेंगे?

उत्तर: जब से सरपंच एवं वार्ड पंच का पद श्रेणी विशेष के लिए आरक्षित हुआ है, तब से ही संभावित उम्मीदवारों द्वारा चुनाव प्रचार किया जा रहा है। सोशल मीडिया के इस युग में चुनाव चिन्ह को मतदाताओं तक पहुंचाना बहुत बड़ी समस्या नहीं है। मात्र 10 समर्पित कार्यकर्ताओं की टीम के बल पर यह कार्य बखूबी किया जा सकता है। इसके अलावा सभी मतदान केंद्र ग्राम पंचायत मुख्यालय पर स्थित है अत: इसमें ज्यादा दिक्कत नहीं आएगी। 2015 तक इसी पद्धति से चुनाव होते थे। उस समय तो सोशल मीडिया का भी इतना प्रचलन नहीं था।

प्रश्न – आपने 457 पंचायत समिति मुख्यालयों पर 10 अक्टूबर, 26 को एक साथ प्रत्याशी प्रबोधन कार्यशालाएं आयोजित की। इसकी जरूरत क्यों पड़ी और इससे क्या लाभ हुआ है ?

उत्तर: आयोग मुख्यालय पर तथा मेरे सोशल मीडिया पेज पर सैकड़ों की संख्या में नामांकन के साथ लगने वाले डाक्यूमेंट्स एवं योग्यता / निर्योग्यता के संबंध में प्रश्न पूछे जा रहे थे। अत: उचित समझा गया कि एक साथ एक जगह पर सारी जिज्ञासाओं का समाधान कर दिया जावे। यह नवाचार सफल रहा और इसकी अत्यधिक सराहना हुई।

प्रश्न – आचार संहिता की पालना के लिए क्या दिशा निर्देश दिए गए हैं ?

उत्तर: वर्तमान में आचार संहिता ग्रामीण क्षेत्रों में लागू है। इस दौरान नई घोषणाओं एवं नई नियुक्तियों पर प्रतिबंध है। जो विकास कार्य पूर्व से चल रहे हैं, वे चलते रहेंगे परंतु नवीन कार्यादेश जारी नहीं किये जा सकते। राजकीय भवनों पर पोस्टर बैनर लगाना प्रतिबंधित है जबकि निजी भवनों पर भी भवन मालिक की अनुमति से ही पोस्टर बैनर लगाया जा सकेंगे। रात्रि 10:00 बजे से प्रात: काल 6:00 बजे तक लाउडस्पीकर का प्रयोग प्रतिबंधित है। दिन में भी लाउडस्पीकर का प्रयोग सक्षम अधिकारी की अनुमति से ही किया जा सकेगा। नामांकन जुलूस व विजय जुलूस बैन किए गए हैं।

प्रश्न – चुनाव के दौरान कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए क्या इंतजाम किए गए हैं?

उत्तर: प्रत्येक मतदान केंद्र पर पुलिस बल एवं होमगार्ड की व्यवस्था की गई है। संवेदनशील मतदान केंद्रों व क्रिटिकल मतदान केंद्रों पर अतिरिक्त पुलिस बल की व्यवस्था की गई है। इसके अलावा ग्राम पंचायत के समूह पर जोनल मजिस्ट्रेट, प्रत्येक पंचायत समिति में एरिया मजिस्ट्रेट एवं पुलिस पेट्रोलिंग पार्टी की व्यवस्था की गई है। आयोग मुख्यालय एवं प्रत्येक जिला कलेक्ट्रेट में 24 घंटे कार्यरत नियंत्रण कक्ष भी स्थापित किया गया है।

प्रश्न – अधिकतम मतदान व मतदाता जागरूकता के लिए क्या कदम उठाए गए हैं ?

उत्तर: जिला प्रशासन तथा स्कूल, कॉलेज के इलेक्टोरल लिटरेसी क्लब के सहयोग से मतदाता जागरूकता रैली, सांस्कृतिक कार्यक्रम, एक खेल लोकतंत्र के नाम, एक दीप लोकतंत्र के नाम, मेहंदी, पोस्टर मेकिंग, स्लोगन मेकिंग, आशुभाषण, निबंध आदि प्रतियोगितायें तथा पंचायत प्रश्नोत्तरी आदि गतिविधियों का आयोजन किया जा रहा है जिससे निश्चित रूप से मतदान प्रतिशत बढ़ाने में मदद मिलेगी।

प्रश्न – दिव्यांग एवं वरिष्ठ मतदाताओं के लिए क्या विशेष व्यवस्थाएँ की गई हैं?

उत्तर: दिव्यांग मतदाताओं को घर से लाने ले जाने की व्यवस्था की गई है, जबकि वरिष्ठ मतदाताओं के लिए पृथक कतार, कुर्सी व पेयजल की व्यवस्था की गई है। इसके लिए एनसीसी / एनएसएस का सहयोग भी लिया जाएगा।

प्रश्न – ग्रामीण मतदाताओं के लिए आपका क्या संदेश है?

उत्तर: ग्रामीण मतदाता किसी भी अनुचित दबाव या प्रलोभन में आए बिना जाति, धर्म से ऊपर उठकर बुद्धिमान, विचारवान, भविष्यदृष्टि संपन्न, कुशल एवं कर्मठ पंचायत प्रतिनिधियों के चुनाव हेतु कृत संकल्प हों ताकि महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज की संकल्पना को मूर्त रूप दिया जा सके।

-राजेश्वर सिंह,
राज्य निर्वाचन आयुक्त, राजस्थान

देवी के चरण, बेटी का मान

बेटे की चाह में बेटी के महत्व को भूल जाना हमारी सामाजिक सोच का ऐसा विरोधाभास है, जिस पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। संतान का लिंग नहीं, उसका स्वास्थ्य, शिक्षा, आत्मनिर्भरता और बेहतर भविष्य हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

डॉ. अर्चना गोदारा

नवरात्रि में नौ छोटी बच्चियों को चुनरी ओढ़ाकर उनके चरण छूते समय शायद ही कोई यह सोचता हो कि जिन पैरों में आज देवी के दर्शन किए जा रहे हैं, उन्हीं पैरों से चलकर आने वाली बेटी का जन्म कुछ घरों में उदासी क्यों ले आता है। जिन कन्याओं को घर बुलाकर भोजन कराया जाता है, उनके सम्मान में कोई कमी नहीं रखी जाती, उन्हीं जैसी किसी बच्ची के अपने घर में जन्म लेने पर कभी-कभी परिवार की खुशियाँ फीकी क्यों पड़ जाती हैं? यह प्रश्न धर्म या आस्था पर नहीं, हमारी सामाजिक मानसिकता पर है। देवी की पूजा हमारी संस्कृति की एक सुंदर परंपरा है। उसमें शक्ति, समृद्धि, साहस और मातृत्व के प्रति श्रद्धा के भाव जुड़े हैं। लेकिन इस परंपरा के बीच दिखाई देने वाला एक विरोधाभास सोचने को विवश करता है। नवरात्रि में कन्या को देवी मानने वाला समाज वर्ष के बाकी दिनों में बेटी को बेटे के बराबर मानने में संकोच क्यों करता है? बेटे की कामना में व्रत रखने वाली स्त्री की आस्था पर प्रश्न उठाना उचित नहीं, लेकिन यह समझना आवश्यक है कि उसके मन में बेटे को लेकर इतनी गहरी आकांक्षा पैदा कहाँ से होती है। क्या यह केवल उसकी अपनी इच्छा है, या पीढ़ियों से चली आ रही सामाजिक अपेक्षाओं ने उसके भीतर यह धारणा बैठा दी है कि बेटे के बिना परिवार अधूरा है? मेरे आसपास के कस्बों और छोटे शहरों में दिखाई देने वाले ऐसे अनेक दृश्य इस प्रश्न को और गहरा कर देते हैं।

इस मानसिकता की जड़ें केवल किसी एक स्त्री की सोच में नहीं, बल्कि परिवार, परंपरा, सामाजिक प्रतिष्ठा और पीढ़ियों से चले आ रहे व्यवहार में छिपी हैं। कई घरों में सास अपनी बहू से सीधे या परोक्ष रूप से बेटे की अपेक्षा करती है। कभी कहा जाता है कि वंश आगे बढ़ाने वाला चाहिए, कभी बुढ़ापे का सहारा बेटे को बताया जाता है और कभी परिवार की प्रतिष्ठा को पुत्र से जोड़ दिया जाता है। बहू के गर्भवती होने पर परिवार की निगाहें संतान के स्वस्थ जन्म से अधिक इस प्रश्न पर टिक जाती हैं कि बेटा होगा या बेटी। बेटी जन्म ले तो सांत्वना के स्वर सुनाई देते हैं कि कोई बात नहीं, अगली बार बेटा हो जाएगा। इन शब्दों में छिपा संदेश उस माँ तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि घर की बड़ी हो रही बेटियों के मन तक भी पहुँचता है। वे धीरे-धीरे समझने लगती हैं कि उनके जन्म से परिवार की कोई इच्छा अधूरी रह गई थी। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह स्थिति महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि बच्चे अपने बारे में केवल कही गई बातों से नहीं, बल्कि अपने साथ किए जाने वाले व्यवहार से भी धारणा बनाते हैं। यदि भाई को बेहतर भोजन, अधिक स्वतंत्रता, पढ़ाई के अधिक अवसर और अपनी पसंद चुनने का अधिकार मिलता है, जबकि बहन से त्याग और समझौते की अपेक्षा की जाती है, तो उसके भीतर हीनता, असुरक्षा या अपने ही परिवार में कम महत्त्वपूर्ण होने का भाव विकसित हो सकता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि कई सासें और घरेलू महिलाएँ स्वयं इसी सोच के बीच पली-बढ़ी होती हैं। उन्होंने अपने जीवन में बेटे को परिवार का गौरव और बेटी को दूसरे घर की अमानत मानते देखा है। इसलिए वे कभी अनजाने में, तो कभी सामाजिक दबाव में, वही व्यवहार आगे बढ़ा देती हैं जो उन्होंने स्वयं सहा था। इसका अर्थ यह नहीं कि हर सास ऐसी होती है या हर माँ बेटे को ही प्राथमिकता देती है। अनेक महिलाएँ इस सोच को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। लेकिन बदलाव के लिए यह स्वीकार करना जरूरी है कि स्त्री केवल इस मानसिकता की शिकार ही नहीं, कई बार अनजाने में उसकी वाहक भी बन जाती है।

इस सोच का सांस्कृतिक पक्ष भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। हमारे व्रतों, त्योहारों और धार्मिक कथाओं की लोकप्रिय व्याख्याओं में अक्सर पुत्र प्राप्ति, पुत्र की दीर्घायु और पुत्र के माध्यम से परिवार की उन्नति की कामना प्रमुखता से सुनाई देती है। अनेक परिवारों में संतान के सुख और स्वास्थ्य की प्रार्थना करने के बजाय विशेष रूप से बेटे के जन्म की मन्नत माँगी जाती है। यह कहना उचित नहीं होगा कि हमारी सभी धार्मिक परंपराएँ बेटियों को कमतर मानती हैं। भारतीय संस्कृति में स्त्री शक्ति की आराधना और विदुषी, साहसी तथा स्वतंत्र महिलाओं की अनेक परंपराएँ भी मौजूद हैं। समस्या तब पैदा होती है, जब हम अपनी परंपराओं के उन्हीं अर्थों को अधिक महत्त्व देते हैं जो बेटे को प्राथमिकता देते हैं, जबकि समानता और करुणा का संदेश पीछे छूट जाता है। नवरात्रि में कन्या पूजन करने वाले परिवारों में से कुछ ऐसे भी होते हैं जहाँ घर की अपनी बेटी से भाई की इच्छा के लिए त्याग करने को कहा जाता है। पूजा के दिन छोटी बच्चियों के लिए पकवान बनाए जाते हैं, उनके चरण छुए जाते हैं, लेकिन त्योहार समाप्त होते ही वही समाज बेटी की शिक्षा, उसके खानपान, उसकी स्वतंत्रता और उसके भविष्य को लेकर सीमाएँ तय करने लगता है। यह किसी पूजा की आलोचना नहीं, बल्कि उसके सामाजिक व्यवहार में उतरने की आवश्यकता की ओर संकेत है। साहित्य भी हमें रिश्तों की इसी जटिलता को समझने में सहायता करता है। मुंशी प्रेमचंद की रचनाओं में पारिवारिक संबंधों, सामाजिक प्रतिष्ठा और मानवीय संवेदना के बीच का संघर्ष बार-बार दिखाई देता है। जीवन में आगे चलकर कौन माता-पिता का सहारा बनेगा, यह उसके लिंग से तय नहीं किया जा सकता। अनेक बेटियाँ अपने माता-पिता की बीमारी में उनकी देखभाल करती हैं, आर्थिक जिम्मेदारियाँ उठाती हैं और कठिन समय में उनके साथ खड़ी रहती हैं। अनेक बेटे भी पूरी निष्ठा से अपने माता-पिता की सेवा करते हैं। इसलिए तुलना का प्रश्न ही गलत है। जरूरत इस बात की है कि हर बच्चे को इतना सक्षम बनाया जाए कि वह अपना जीवन सम्मान से जी सके और अपनी इच्छा से परिवार तथा समाज के प्रति जिम्मेदारी निभा सके। हमें बच्चों को इस आधार पर नहीं परखना चाहिए कि वे हमारे बुढ़ापे में क्या देंगे, बल्कि इस आधार पर उनका पालन-पोषण करना चाहिए कि हम उन्हें कैसा मनुष्य बना रहे हैं। माता-पिता के लिए इससे बड़ी उपलब्धि क्या होगी कि उनकी संतान स्वस्थ हो, आत्मनिर्भर हो, अपने निर्णय लेने में सक्षम हो और अपने काम से समाज में पहचान बनाए? यदि वह आगे चलकर सुविधासंपन्न जीवन जीती है, तो यह उसके परिश्रम और अवसरों का परिणाम होगा। यदि जीवन में कठिनाइयाँ आएँ, तो भी उसके पास उनसे जूझने की क्षमता होनी चाहिए। यह लक्ष्य बेटे और बेटी, दोनों के लिए समान है। जिस दिन घर में बच्चों का मूल्य उनके लिंग के बजाय उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, संवेदनशीलता और संभावनाओं से तय होने लगेगा, उस दिन यह मानसिकता सचमुच बदलने लगेगी।

जिस दिन हम बेटे की मन्नत से आगे बढ़कर संतान के सुख की कामना करने लगेंगे, उस दिन हमारी पूजा का अर्थ भी अधिक व्यापक होगा और हमारी संस्कृति का मानवीय पक्ष भी अधिक उज्ज्वल दिखाई देगा।

–डॉ. अर्चना गोदारा,
सहायक आचार्य एवं लेखक

महानवमी चिंतन – वृति के परिष्कार का संदेश देती है दुर्गा सप्तशती

संदीप जोशी

सनातन परपरा में शाक्त उपासना का महापर्व नवरात्रि अपनी पूर्णाहुति की ओर अठासर है। दुर्गाष्टमी, महानवमी का पुण्य अवसर और इसके साथ ही असत्य पर सत्य की विजय का महान प्रतीक विजयादशमी पर्व है। बंगाल के भव्य पूजा पंडालों से लेकर गुजरात की गरबा रास की झंकारों तक, और देश के कोने-कोने में स्थापित शक्तिपीठों से लेकर घर-घर के अनुष्ठानों तक-समूचा भारतवर्ष माँ जगदम्बा की भक्ति में सराबोर है। नवरात्रि के इन पावन दिनों में अनगिनत साधकों ने व्रत-उपवास किए हैं और दुर्गा सप्तशती के मंत्रों का सस्वर पाठ किया है। दुर्गा सप्तशती केवल एक धार्मिक अनुष्ठान या स्तुति-संठाह मात्र नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के सर्वांगीण विकास, नैतिक आचरण और सामाजिक संतुलन का एक अत्यंत व्यावहारिक एवं उच्च दार्शनिक ठांथ है। श्रीमद्भगवद्गीता में सात सौ श्लोक है और दुर्गा सप्तशती में भी सात सौ श्लोक हैं। जिस प्रकार भागवत गीता शौर्य पराक्रम उत्साह के साथ जीवन दर्शन का ठांथ है, उसी प्रकार दुर्गा सप्तशती भी शौर्य पराक्रम उत्साह के साथ-साथ जीवन का दर्शन भी सिखाती है। सात्विक सकारात्मक जीवन जीने की प्रेरणा देती है दुर्गा सप्तशती।

इस ग्रंथ के पाँचवें अध्याय में माँ भगवती की एक प्रसिद्ध और अत्यंत लोकप्रिय स्तुति आती है- नमस्तस्यै नमस्तस्यै। इसमें देवी की लक्ष्मी रूप में, शक्ति रूप में, मातृ रूप में इत्यादि अनेक रूप में वंदना की गई है। इसी स्तुति का एक श्लोक है–

या देवी सर्वभूतेषु वृत्ति रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

अर्थात्, जो भगवती समस्त प्राणियों में वृत्ति के रूप में विराजमान हैं, उन आद्यशक्ति को बारंबार नमस्कार है। दुर्गा सप्तशती की यह एक पंक्ति हमें दुनियादारी के प्रपंच से ऊपर उठाकर जीवन के सबसे महत्वपूर्ण विषय हमारे आचरण और हमारी आजीविका पर चिंतन करने के लिए प्रेरित करती है। यदि एक श्लोक को साध लिया जाए जीवन में उतार लिया जाए तो भ्रष्टाचार एवं नैतिक स्खलन जैसी व्यापक बड़ी चुनौतियों और समस्याओं का समाधान हो सकता है।

वृत्ति के दो आयाम: स्वभाव और आजीविका का दर्शन-

शास्त्रों और भाषा-विज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो वृत्ति शब्द के दो मूल अर्थ अत्यंत प्रचलित हैं-पहला स्वभाव या मनोवृत्ति (व्यक्ति का आंतरिक चिंतन और आचरण, जिससे प्रवृत्ति शब्द बना है) और दूसरा आजीविका (जीवन-निर्वाह, व्यवसाय, नौकरी या धन-उपार्जन का साधन)। दुर्गा सप्तशती के दार्शनिक धरातल पर मनुष्य को जगदम्बा की ही चेतना का अंश माना गया है। सनातन परंपरा में माँ भगवती की आराधना त्रिगुणात्मक शक्ति के रूप में की जाती है- महाकाली: शक्ति, ऊर्जा, संकल्प और तामसिक वृत्तियों के शमन की प्रतीक। महालक्ष्मी: समृद्धि, ऐश्वर्य, भौतिक साधन और राजसिक वृत्तियों के नियमन की प्रतीक। महासरस्वती: ज्ञान, विवेक, कला और सात्विक वृत्तियों के संवर्धन की प्रतीक। हमारे शास्त्र इस बात का आ ान करते हैं कि मनुष्य का स्वभाव भी इन तीनों दैवीय गुणों का एक संतुलित